मुद्रक तथा प्रकाशक

घनश्यामदास जालान

गीताप्रेस, गोरखपुर

प्रथम सं० ५००० }
द्वितीय सं० १००० }
तृतीय सं० ३००० } मूल्य)॥ दो पैसा
चतुर्थ सं० ५००० }

{ १९९० वि०
{ १९९३ वि०
{ १९९५ वि०
{ १९९८ वि०

भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय
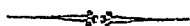
मनुष्य-जीवनका उद्देश्य भगवान्‌को प्राप्त करना है। शास्त्रों और सन्त-महात्माओंने इसके लिये अनेकों उपाय बतलाये हैं। अपने-अपने अधिकार और रुचिके अनुसार किसी भी शास्त्रोक्त उपायको निष्काम-भावसे अर्थात् सांसारिक सुख-प्राप्तिकी कामनाको छोड़कर केवल भगवत्प्रीत्यर्थ काममें लानेसे यथासमय मनुष्य भगवत्‌को प्राप्त होकर अपने जन्म और जीवनको सार्थक कर सकता है। भगवान् श्रीमनुमहाराजने धर्मके दश लक्षण बतलाये हैं, इन दश लक्षणोंवाले धर्मका निष्काम आचरण करनेवाला मनुष्य मायाके बन्धनसे छूटकर भगवान्‌को पा सकता है—

दश उपाय

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

(मनु० ६। ९२)

अर्थात्—

धृति, क्षमा, शम, शौच, दम, विद्या, धी, अक्रोध।
सत्य, अचोरी धर्म दश, देते हैं मनु बोध॥

इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार समझना चाहिये—

१ धृति–किसी प्रकारका भी संकट आ पड़नेपर या इच्छित वस्तुकी प्राप्ति न होनेपर धैर्यको न छोड़ना। जो धीरजको धारण किये रहता है, उसीका धर्म बचता है और वही लौकिक और पारलौकिक सफलता प्राप्त कर सकता है।

२ क्षमा–अपने साथ बुराई करनेवालेको दण्ड देने-दिलानेकी पूरी शक्ति रहनेपर भी उसको दण्ड देने-दिलानेकी भावनाको मनमें भी न लाकर उसके अपराध-को सह लेना और उसका अपराध सदाके लिये मिट जाय, इसके लिये यथोचित चेष्टा करना, इसको क्षमा कहते हैं।

३ दम–साधारणतः इन्द्रिय-निग्रहको दम कहते हैं, परन्तु इस श्लोकमें इन्द्रिय-निग्रह अलग कहा गया है, इससे यहाँ 'दम' शब्दसे शमको अर्थात् मनके निग्रहको लेना चाहिये। मनको वशमें किये बिना भगवत्-प्राप्ति प्रायः असम्भव है (गीता ६। ३६) भगवान्ने

अभ्यास और वैराग्यसे मनका वशमें होना बतलाया है। (गीता ६ । ३५)

४ अस्तेय—मन, वाणी, शरीरसे किसी प्रकारकी चोरी न करना।

५ शौच—बाहर और भीतरकी शुद्धि—सत्यतापूर्वक शुद्ध व्यापारसे द्रव्यकी, उसके अन्नसे आहारकी, यथायोग्य वर्तावसे आचरणोंकी और जल, मिट्टी आदिसे की जानेवाली शरीरकी शुद्धिको बाहरकी शुद्धि कहते हैं। एवं राग-द्वेष, दम्भ-कपट तथा वैर-अभिमान आदि विकारोंका नाश होकर अन्तःकरणका स्वच्छ हो जाना भीतरकी शुद्धि कहलाती है।

६ इन्द्रिय-निग्रह (दम)—इन्द्रियोंको उनके विषय, रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्शमें इच्छानुसार न जाने देकर अनिष्टकारी विषयोंसे हटाये रखना और कल्याणकारी विषयोंमें लगाना।

७ धी (बुद्धि)—सात्विकी श्रेष्ठ बुद्धि, जो सत्संग, सत्-शास्त्रोंके अध्ययन, भगवद्भजन और आत्मविचारसे उत्पन्न होती है तथा जिससे मन परमात्मामें लगता है और यथार्थ ज्ञान उत्पन्न होता है।

८ विद्या—वह अध्यात्मविद्या, जिसको भगवान्ने अपना स्वरूप बतलाया है और जो मनुष्यको अविद्यासे छुड़ाकर परमात्माके परमपदको प्राप्त कराती है।

९ सत्य—यथार्थ और प्रिय भाषण। अन्तःकरण और इन्द्रियोंसे जैसा निश्चय किया हो, वैसा ही प्रिय शब्दोंमें कहना तथा यह ध्यानमें रखना कि इससे किसी निर्दोष प्राणीका नुकसान तो नहीं हो जायगा। सत्य वही है, जो यथार्थ हो, प्रिय हो, कपटरहित हो और किसीका अहित करनेवाला न हो।

१० अक्रोध—अपनी बुराई करनेवालेके प्रति भी मनमें किसी प्रकारसे क्रोधका विकार न होना। अक्रोध और क्षमामें यही भेद है कि अक्रोधसे तो कोई क्रिया नहीं होती, जो कुछ होता है, मनुष्य सब सह लेता है, मनमें विकार पैदा नहीं होने देता, परन्तु इससे हमारी बुराई करनेवालेका अपराध क्षमा नहीं होता, उसका फल उसे न्यायकारी ईश्वरके द्वारा लोक-परलोकमें अवश्य मिलता है। क्षमामें उसका अपराध भी क्षमा हो जाता है।*

नौ उपाय

उपर्युक्त दस उपायोंको काममें न ला सकें तो,

* इन दस धर्मोंका विस्तार देखना तथा मनको वशमें करनेकी विधि जाननी हो तो गीताप्रेससे 'मानव-धर्म' और 'मनको वश करनेके कुछ उपाय' नामक पुस्तकें मँगवाकर जरूर पढ़िये। मूल्य क्रमशः ≈) और -)। है।

निम्नलिखित नवधा भक्तिके नौ साधनोंसे परमात्माको प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिये । नवधा भक्ति यह है—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥
(श्रीमद्भा० ७ । ५ । २३)

अर्थात्—

श्रवण, कीर्तन, स्मरण नित, पदसेवन भगवान ।
पूजन, वन्दन, दास्य-रति, सख्य, समर्पण जान ॥

१ श्रवण—भगवान्‌के चरित्र, लीला, महिमा, गुण, नाम तथा उनके प्रेम एवं प्रभावकी बातोंका श्रद्धापूर्वक सदा सुनना और उसीके अनुसार आचरण करनेकी चेष्टा करना, श्रवण-भक्ति है । श्रीमद्भागवतके श्रवण-मात्रसे धुन्धुकारी-सरीखा पापी तर गया था । राजा परीक्षित आदि इसी श्रेणीके भक्त माने जाते हैं ।

२ कीर्तन—भगवान्‌की लीला, कीर्ति, शक्ति, महिमा, चरित्र, गुण, नाम आदिका प्रेमपूर्वक कीर्तन करना कीर्तन-भक्ति है । श्रीनारद, व्यास, वाल्मीकि, शुकदेव, चैतन्य आदि इसी श्रेणीके भक्त माने जाते हैं ।

३ स्मरण—सदा अनन्यभावसे भगवान्‌के गुणप्रभाव-सहित उनके स्वरूपका चिन्तन करना और बारंबार उनपर मुग्ध होना स्मरण-भक्ति है । श्रीप्रह्लादजी,

श्रीध्रुव, भरतजी, भीष्मजी, गोपियाँ आदि इस श्रेणीके भक्त हैं।

४ पादसेवन—भगवान्‌के जिस रूपकी उपासना हो, उसीका चरण-सेवन करना या भूतमात्रमें परमात्माको समझकर सबका चरणसेवन करना। श्रीलक्ष्मीजी, श्रीरुक्मिणीजी, श्रीभरतजी इस श्रेणीके भक्त हैं।

५ पूजन—अपनी रुचिके अनुसार भगवान्‌की किसी मूर्ति-विशेषका या मानसिक स्वरूपका नित्य भक्तिपूर्वक पूजन करना। मानसिक पूजनकी विधि जाननी हो तो गीताप्रेससे प्रकाशित 'प्रेमभक्तिप्रकाश' नामक पुस्तक मँगवाकर अवश्य पढ़नी चाहिये। विश्वभरके सभी प्राणियों-को परमात्माका स्वरूप समझकर उनकी सेवा करना भी अव्यक्त भगवान्‌की पूजा है। राजा पृथु, अम्बरीष आदि इसी श्रेणीके भक्त हैं।

६ वन्दन—भगवान्‌की मूर्तिको या विश्वभरको भगवान्‌की मूर्ति समझकर प्राणीमात्रको नित्य प्रणाम करना वन्दन-भक्ति है। श्रीअक्रूर आदि वन्दन-भक्त गिने जाते हैं।

७ दास्य—श्रीपरमात्माको ही अपना एकमात्र स्वामी और अपनेको उनका नित्य दास समझकर किसी भी प्रकारकी कामना न रखते हुए श्रद्धाभक्तिके साथ नित्य

नये उत्साहसे भगवान्‌की सेवा करना और उस सेवाके सामने मोक्ष-सुखको भी तुच्छ समझना । श्रीहनूमान्‌जी, श्रीलक्ष्मणजी आदि इस श्रेणीके भक्त हैं ।

८ सख्य—श्रीभगवान्‌को ही अपना परम हितकारी परम सखा मानकर दिल खोलकर उनसे प्रेम करना । भगवान् अपने सखा मित्रका छोटे-से-छोटा काम बड़े हर्षके साथ करते हैं । श्रीअर्जुन, उद्धव, सुदामा, श्रीदाम आदि इस श्रेणीके भक्त हैं ।

९ आत्मनिवेदन या समर्पण—अहंकाररहित होकर अपना सर्वस्व श्रीभगवान्‌के अर्पण कर देना । महाराजा बलि, श्रीगोपियाँ आदि इस श्रेणीके भक्त हैं ।*

आठ उपाय

उपर्युक्त नौ उपायोंको काममें न ला सकें तो महर्षि पतञ्जलिकथित अष्टाङ्गयोगके आठ साधनोंको काममें लानेसे भगवत्-प्राप्ति हो सकती है । वे आठ साधन ये हैं—

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ।

(योग० सा० २९)

---

* नवधा भक्तिका विशेष विस्तार देखना हो तो गीताप्रेससे प्रकाशित 'तुलसीदल' नामक पुस्तक मँगवाकर उसके 'भक्ति-सुधा-सागर-तरंग' नामक अध्यायको पढ़ना चाहिये ।

अर्थात्—

यम नियमासन साधकर, प्राणायाम विधान।
प्रत्याहार सु-धारणा ध्यान समाधि बखान॥

१ यम—यम पाँच हैं—

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।

(यो० सा० ३०)

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

(क) मन, वाणी, शरीरसे किसी प्राणीकी हिंसा न करनी, न करवानी और न समर्थन करना। लोभ, मोह या क्रोधसे किसी प्रकार किसीको किञ्चित् भी कष्ट न पहुँचाना अहिंसा कहलाती है।

(ख) जैसा कुछ देखा-सुना-समझा हो, वैसा ही पराये हितकी दृष्टि रखकर यथार्थ कहना सत्य है।

(ग) मन, वाणी, शरीरसे कभी दूसरेकी किसी भी वस्तुपर अधिकार न जमाना अस्तेय है।

(घ) आठ प्रकारके मैथुनोंका सर्वथा त्याग करना ब्रह्मचर्य है।*

(ङ) भोग्य-वस्तुओंका सर्वथा संग्रह नहीं करना अथवा ममता-बुद्धिसे किसी भी भोग्य-वस्तुका संग्रह न करना अपरिग्रह है।

---

* ब्रह्मचर्यका खुलासा गीताप्रेससे प्रकाशित 'ब्रह्मचर्य' नामक पुस्तकमें पढ़ें।

अहिंसावृत्तिका पूर्ण पालन होनेसे उसके निकट रहनेवाले हिंसक पशुओंमें भी हिंसावृत्ति नहीं रहती। (२ । ३५)

सत्यका व्रत पूरा पालन होनेपर जो कुछ भी कहा जाय वही सत्य हो जाता है, उसकी वाणी कभी व्यर्थ नहीं जाती। (२ । ३६)

अस्तेय-व्रतकी पूर्ण पालना होनेसे सारे रत्नोंपर उसका अधिकार हो जाता है।

ब्रह्मचर्यकी पूर्ण प्रतिष्ठा होनेसे वीर्य यानी शारीरिक और मानसिक महान् पराक्रमकी प्राप्ति होती है। (२ । ३८)

अपरिग्रहके पूर्ण पालनसे जन्मान्तरकी बातें जानी जा सकती हैं। (२ । ३९)

२ नियम—नियम भी पाँच हैं—

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः

(यो० सा० ३२)

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान।

(क) मिट्टी, जल आदिसे शरीरकी और शुद्ध व्यापार और आचरणोंसे आहार-व्यवहारकी शुद्धि, और राग-द्वेषादिके त्यागसे भीतरकी शुद्धि—यह शौच है।

(ख) भगवत्कृपासे जो कुछ भी प्राप्त हो जाय उसीमें सन्तुष्ट होना यह सन्तोष है।

(ग) धर्म-पालनके लिये कष्ट सहन करना या कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रत करना अथवा शीतोष्णादि सहना तप है ।

(घ) वेद, उपनिषद्, गीता और ऋषिप्रणीत शास्त्रोंका अध्ययन, गायत्री आदि मन्त्र और भगवन्नाम-का जप स्वाध्याय कहलाता है ।

(ङ) भगवान्‌को सर्वस्व अर्पण करना और उन्हीं-के परायण हो जाना, ईश्वर-प्रणिधान है ।

बाह्य शौचके पूर्ण पालनसे अपने शरीरपर घृणा हो जाती है और दूसरेके संसर्गमें वैराग्य हो जाता है । आन्तरिक शौचसे चित्तकी शुद्धि, मनकी प्रसन्नता, एकाग्रता, इन्द्रियोंपर विजय और आत्मदर्शनकी योग्यता प्राप्त हो जाती है । (२ । ४०-४१)

सन्तोषके पूर्ण धारणसे सर्वोत्तम सुखकी प्राप्ति होती है । (२ । ४२)

तपके द्वारा अशुद्धिका नाश होकर अणिमा, लघिमा आदि शरीरकी और दूरदर्शन-श्रवण आदि इन्द्रियोंकी सिद्धि प्राप्त होती है । (२ । ४३)

स्वाध्यायसे अपने इष्टदेवताके दर्शन होते हैं । (२ । ४४)

ईश्वर-प्रणिधानसे समाधिकी सिद्धि होती है । (२ । ४५)

३ आसन—स्थिरभावसे अधिक कालतक बैठनेका नाम आसन है। सिद्धासन, पद्मासन, सुखासन आदि अनेक आसन होते हैं। आसनकी सिद्धिसे शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वोंसे पीड़ा नहीं होती।

४ प्राणायाम—श्वास-प्रश्वासकी गतिको रोकनेका नाम प्राणायाम है। रेचक, पूरक और कुम्भक नामक तीन प्रकारके प्राणायाम होते हैं। प्राणायामका अभ्यास गुरुसे सीखकर करना चाहिये। प्राणायामके अभ्याससे प्रकाशका आवरण यानी ज्ञानको ढक रखनेवाला पर्दा क्षय हो जाता है। मनकी शक्ति धारणाके योग्य हो जाती है।

५ प्रत्याहार—अपने-अपने विषयोंके साथ सम्बन्ध न रहनेपर इन्द्रियोंका चित्तके अनुसार हो जाना इसका नाम प्रत्याहार है। प्रत्याहारसे इन्द्रियोंपर पूर्ण विजय मिल जाती है।

६ धारणा—एक देशमें चित्तको रोकनेका नाम धारणा है।

७ ध्यान—चित्तवृत्तिके ध्येय पदार्थमें तैलधारावत् एकतान स्थिर रहनेका नाम ध्यान है।*

---

* ध्यानके सम्बन्धमें विशेष बातें जाननी हों तो गीता-प्रेससे प्रकाशित तत्त्व-चिन्तामणि नामक पुस्तकके प्रथम भागमें देखना चाहिये।

८ समाधि—ध्यानकी परिपुष्टि होनेसे ध्याता, ध्यान और ध्येयकी त्रिपुटी मिटकर एकता हो जाती है, तब उसे समाधि कहते हैं। समाधि सबीज और निर्बीज-भेदसे दो प्रकारकी है, सबीजमें त्रिपुटीके न रहनेपर भी सूक्ष्म संस्कार रहते हैं और निर्बीजमें सूक्ष्म संस्कारों-का भी अत्यन्त निरोध हो जाता है।

सात उपाय

उपर्युक्त आठ उपायोंका आचरण न हो तो निम्न-लिखित सात उपायोंके अनुसार निष्काम आचरण करनेसे भगवत्-प्राप्ति हो सकती है।

इस असार संसारमें सात वस्तु हैं सार।
संग, भजन, सेवा, दया, ध्यान, दैन्य, उपकार॥

१ संग—संगसे यहाँ सत्संगसे तात्पर्य है। भगवत्-प्रेमी महात्मा पुरुषों और सत्-शास्त्रोंके संगसे मनुष्यको जो लाभ होता है वह अवर्णनीय है। भगवान्‌की महत्ता सत्संगसे ही जानी जाती है। सत्संगसे ही जीवका अज्ञानान्धकार दूर होता है। गोसाईंजी महाराज कहते हैं—

बिनु सत्सङ्ग न हरिकथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गये बिनु रामपद होहिं न दृढ़ अनुराग॥

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला इक अंग ।
तुलै न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सत्संग ॥

इसी प्रकार श्रीमद्भागवतमें शौनकादि ऋषि कहते हैं—

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥
(१ । १८ । १३)

हम एक क्षणभरके भगवत्प्रेमियोंके संगकी तुलनामें मनुष्योंके लिये स्वर्ग या मोक्षको भी तुच्छ समझते हैं तब अन्य सांसारिक वस्तुओंकी तो बात ही क्या है ! भगवान् स्वयं श्रीउद्धवसे कहते हैं—

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा ॥
व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः ।
यथावरुन्धे सत्सङ्गः सर्वसङ्गापहो हि माम् ॥
(श्रीमद्भा० ११ । १२ । १-२)

'हे उद्धव ! सारी सांसारिक आसक्तियोंको नाश करनेवाले सत्संगके द्वारा जिस प्रकार मैं पूरी तरह वशमें होता हूँ, उस प्रकार योग, सांख्य, धर्म, स्वाध्याय, तप, त्याग, यागादि वैदिक कर्म, कुएँ-बावड़ी बनाने और बाग लगाने, दान-दक्षिणा, व्रत, यज्ञ, वेदाध्ययन,

तीर्थयात्रा, नियम, यम आदि किसी भी साधनसे नहीं होता ।'

परन्तु सत्संगके लिये साधु कैसे होने चाहिये, इस बातपर भी विचार करना आवश्यक है । श्रीमद्भगवद्गीताके दूसरे अध्यायमें स्थितप्रज्ञ पुरुषोंके, बारहवें अध्यायमें भक्तोंके, चौदहवेंमें गुणातीत पुरुषोंके जो लक्षण बतलाये गये हैं, वैसे लक्षण न्यूनाधिकरूपसे जिन पुरुषोंमें घटते हों, वे ही वास्तविक सन्त पुरुष हैं । श्रीमद्भागवतमें सन्तोंके लक्षण बतलाते हुए श्रीकपिलदेवजी महाराज अपनी मातासे कहते हैं—

तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम् ।
अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः ॥
मय्यनन्येन भावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये दृढाम् ।
मत्कृते त्यक्तकर्माणस्त्यक्तस्वजनबान्धवाः ॥
मदाश्रयाः कथा मृष्टाः शृण्वन्ति कथयन्ति च ।
तपन्ति त्रिविधास्तापा नैतान्मद्गतचेतसः ॥
त एते साधवः साध्वि सर्वसङ्गविवर्जिताः ।
सङ्गस्तेष्वथ ते प्रार्थ्यः सङ्गदोषहरा हि ते ॥

(श्रीमद्भा० ३ । २५ । २१–२४)

'हे माता ! जो द्वन्द्वोंको सहन करते हैं, दयालु हैं, सब भूतप्राणियोंके निःस्वार्थ प्रेमी हैं, शान्त हैं, जिनके

कोई भी शत्रु नहीं है, शील ही जिनका भूषण है, जो मुझ भगवान्‌में अनन्य और दृढ़भावसे भक्ति करते हैं, जिन्होंने मेरे लिये समस्त कर्मों और स्वजन-बान्धवोंके ममत्वको भी त्याग दिया है, जो मेरे ही आश्रित हैं, मेरी कथाको मधुर समझनेवाले हैं, नित्य मेरी ही कथा कहते-सुनते हैं, ऐसे मुझमें लगे हुए चित्तवाले वे साधु त्रिविध तापोंसे पीड़ित नहीं होते। वे समस्त आसक्तियोंसे रहित होते हैं। वे ही आसक्तिके दोषका नाश कर सकते हैं। अतएव, हे साध्वि! उन्हींका सङ्ग करना चाहिये।

इसलिये हजार काम छोड़कर भी सदा प्रेमसे और श्रद्धासे सत्सङ्ग करना चाहिये।

२ भजन—गोसाईंजी महाराज कहते हैं—

बारि मथे घृत होइ बरु सिकताते बरु तेल।
बिनु हरि-भजन न भव तरहिं यह सिद्धान्त अपेल॥

बात भी ठीक है। संसारसे तरनेके लिये भगवान्‌का भजन ही मुख्य है। भजनके पीछे सारे गुण आप ही आ जाते हैं। ध्रुव, प्रह्लाद, मीरा आदि भक्तोंको भजनके ही प्रतापसे भगवान्‌ने दर्शन देकर कृतार्थ किया था।

३ सेवा—सेवा मनुष्यका मुख्य धर्म है। सारे संसारको भगवान्‌का स्वरूप समझकर मन, वाणी, शरीरसे

अभिमान छोड़कर सबकी निःस्वार्थ सेवा करनी चाहिये। जिसकी सेवा करनेका मौका मिले, उसका और भगवान्‌का अपने ऊपर उपकार मानना चाहिये। क्योंकि उसने हमारी सेवा स्वीकार करके और भगवान्‌ने सेवाका अवसर प्रदान करके हमारा बड़ा उपकार किया। सेवा करके किसीपर एहसान नहीं करना चाहिये तथा सेवा स्वीकार करनेवालेको कभी छोटा नहीं समझना चाहिये।

४ दया—दुःखी प्राणीके दुःखको देखकर हृदयका पिघल जाना और उसका दुःख दूर करनेके लिये मनमें भाव उत्पन्न होना दया कहलाता है। अहिंसा अक्रिय है और दया सक्रिय है। अहिंसामें केवल हिंसासे बचना है, परन्तु दयामें दूसरेको सुख पहुँचाना है। जिस मनुष्यके दिलमें दया नहीं, उसका हृदय पाषाणके समान है। गरीब, अनाथ, अपाहिज, रोगी, असहाय जीवोंपर दया करके जीवनको सफल करना चाहिये। चैतन्य महाप्रभुने तो तीन ही बातोंमें अपना उपदेश समाप्त किया है—

नामे रुचि, जीवे दया, वैष्णव-सेवन।
इहा छाड़ा आर नाहिं जानि सनातन॥

'हे सनातन! भगवान्‌के नाममें रुचि, जीवोंपर

दया और भक्तोंका सङ्ग—इन तीनके सिवा मैं और कुछ भी नहीं जानता।'

५ ध्यान-ध्यान तो ईश्वर-प्राप्तिकी कुञ्जी है। ध्यान करनेकी कोशिश करनेपर अभ्यास न होनेके कारण पहले-पहले मन ऊबता है तथा घबड़ाता है परन्तु यदि दृढ़ निश्चयके साथ रोज-रोज नियमितरूपसे ध्यानका अभ्यास किया जाय तो मन ध्यानका अभ्यासी बन जाता है, फिर ध्यानमें जो आनन्द आता है, वैसा आनन्द अन्य किसी कार्यमें नहीं आता। इसलिये नित्य-प्रति दृढ़ निश्चयके साथ अपने इष्टदेवके ध्यानका अभ्यास अवश्य करना चाहिये। ध्यान सबसे बढ़कर उपाय है।

६ दैन्य-अभिमान ही मनुष्यको गिरानेवाला है, यदि मनुष्य विनयी हो जाय, परमात्माके सामने दीन बन जाय तो दीनबन्धु उसपर अवश्य दया करते हैं, इसलिये वक्रता और ऐंठको छोड़कर दीनता धारण करनी चाहिये।

७ उपकार—लिखा है—

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥

'अठारह पुराणोंमें व्यासके दो ही वचन हैं—परोप-

कार पुण्यका हेतु है और परपीडन पापका हेतु है।'
गोसाईंजी महाराज भी कहते हैं—

परहित सरिस धर्म नहिं भाई।
परपीड़ा सम नहिं अधमाई॥
परहित बस जिनके मन माहीं।
तिनकहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

अतएव अभिमान, स्वार्थ और कामनाको छोड़कर निरन्तर परोपकारमें रत रहना चाहिये।

छः उपाय

उपर्युक्त सात उपायोंके अनुसार न चला जाय तो नीचे लिखे छः उपायोंका अनुसरण करना चाहिये। इन्हींके निष्काम आचरणसे भगवत्-प्राप्ति हो सकती है—

सन्ध्या, पूजा, यज्ञ, तप, दया, सु-सात्त्विक दान।
इन छःके आचरणसे निश्चय हो कल्यान॥

१ सन्ध्या—द्विजातिमात्रको नित्य त्रिकाल-सन्ध्या करनी चाहिये। त्रिकाल न हो सके तो प्रातःकाल और सायंकाल दो समय तो सन्ध्या अवश्य ही करें। सन्ध्याके द्वारा परमात्माकी—सूर्य, अग्नि और जलरूपसे उपासना होती है। मनु महाराज कहते हैं—

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः॥

'जो द्विज प्रातःकाल और सायंकालकी सन्ध्योपासना नहीं करता, उसे द्विजजातिके सारे कार्योंसे शूद्रकी तरह दूर रखना चाहिये ।'

अतः सन्ध्योपासन कभी छोड़ना नहीं चाहिये । सूतक आदिके समय या रेल वगैरहमें मानसिक सन्ध्या कर लेना उचित है । सन्ध्या ठीक समयपर करनी चाहिये ।

सन्ध्याका समय यह है—

उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका ।
कनिष्ठा सूर्यसहिता प्रातःसन्ध्या त्रिधा स्मृता ॥
उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमा लुप्तभास्करा ।
कनिष्ठा तारकोपेता सायंसन्ध्या त्रिधा स्मृता ॥
(देवीभाग० ११ । १६ । ४-५)

'प्रातःकालकी सन्ध्या तीन प्रकारकी है, तारा रहते उत्तम, तारे अदृश्य हो जानेपर मध्यम और सूर्य उदय होनेपर कनिष्ठ, इसी प्रकार सायं-सन्ध्या भी तीन प्रकारकी है । सूर्य रहते उत्तम, सूर्य छिप जानेपर मध्यम और तारे उदय होनेपर कनिष्ठ ।'

प्रातःकाल सूर्यदेवके रूपमें भगवान् हमारे प्रदेशमें पधारते हैं और सायंकाल दूसरे प्रदेशके लिये जाते हैं । जैसे हम अपने किसी पूज्य सम्मान्य अतिथिके हमारे घरपर आनेके समयसे पूर्व ही उसके स्वागतकी तैयारी करते हैं, स्टेशनपर पहलेहीसे पहुँचकर उसके सम्मान-

सत्कारके लिये पुष्पहार आदि लेकर उसका अभिवादन करनेके लिये खड़े रहते हैं और उसके जानेके समय पहलेहीसे सारा प्रबन्ध कर ठीक समयपर उसके साथ स्टेशनतक जाते हैं, इसी प्रकार सन्ध्याके द्वारा भगवान् सूर्यदेवका अभिवादन किया जाता है, जो ठीक समयपर ही होना चाहिये। सन्ध्योपासनासे सारे पाप दूर होते हैं और इसीसे अन्तमें भगवान्की प्राप्ति हो जाती है। यदि हम जीवनभर नियमपूर्वक सूर्यदेवकी दोनों समय निष्कामभावसे अभ्यर्थना करेंगे तो हमारे मरनेपर सूर्य-देवको भी हमारी मुक्तिके लिये सहायता करनेको बाध्य होना पड़ेगा। शास्त्रमें कहा है—

सन्ध्यामुपासते ये तु सततं संशितव्रताः।
विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकं सनातनम्॥

'जो द्विज सदाचारपरायण होकर नित्य सन्ध्योपासन करते हैं, वे सारे पापोंसे छूटकर सनातन ब्रह्मपदको पाते हैं।'

२ पूजा—भगवन्मूर्तिकी बाह्य या मानसिक पूजा नित्य-नियमपूर्वक सबको करनी चाहिये। स्त्रियों और बालकोंके लिये घर-घरमें भगवान्की मूर्ति या चित्रपट रखकर पूजाकी व्यवस्था होनी चाहिये। स्त्री-बच्चे घरमें भगवान्की पूजा करते रहेंगे तो उनके संस्कार अच्छे

होंगे । भगवान्‌में भक्ति उत्पन्न होगी । मीराबाई, धन्ना जाट आदि भक्तगण इसी प्रकार पूजासे परम भक्त हो गये थे ।

३ यज्ञ—श्रीमद्भगवद्गीतामें तो अनेक प्रकारके यज्ञ बतलाये हैं । जिनमें भगवान्‌ने जप-यज्ञको तो अपना स्वरूप ही बतलाया है । 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' (१० । २५) इसलिये भगवान्‌के नामका जप तो सभीको करना चाहिये । २१६०० श्वास मनुष्यको प्रायः रोज आते हैं, इसलिये इतने नामोंका जप तो जरूर कर ही लेना चाहिये । जपमें उपांशु जप सर्वोत्तम है । इसके सिवा गृहस्थके लिये पञ्चमहायज्ञकी भी बड़ी आवश्यकता है । कम-से-कम बलिवैश्वदेव तो नित्यप्रति अवश्य ही करना चाहिये । बलिवैश्वदेवकी विधि अन्यत्र प्रकाशित है ।

४ तप—स्वधर्मके पालनमें बड़े-से-बड़ा कष्ट सहना तप कहलाता है । तथा गीता अध्याय १७ श्लोक १४ से १९ तक शारीरिक, मानसिक, वाचिक तीन प्रकारके तपका वर्णन है, उसके अनुसार सात्त्विक तप करना चाहिये ।

५ दया—स्मृतिकार कहते हैं—

परे वा बन्धुवर्गे वा मित्रे द्वेष्टरि वा सदा ।
आपन्ने रक्षितव्यं तु दयैषा परिकीर्तिता ॥

(अत्रिस्मृ० ४१)

'घरका हो या बाहरका, मित्र हो या वैरी, किसीको भी दुःखमें देखकर सदैव ही उसको बचानेकी चेष्टा करनी दया कहलाती है।' दयालु पुरुषका हृदय दूसरेके दुःख-को देखकर तत्काल द्रवित हो जाता है। कहा है—

दया धर्मका मूल है पाप-मूल अभिमान।
तुलसी दया न छाँड़िये जबलगि घटमें प्रान॥

६ दान—दान देना मनुष्यमात्रका धर्म है। धन, विद्या, बुद्धि, अन्न, जल, वस्त्र, सत्परामर्श, जिसके पास जो कुछ हो योग्य देश, काल, पात्र देखकर उसका दान करना चाहिये, परन्तु दान सात्त्विकभावसे होना चाहिये। जो दान देश, काल, पात्र न देखकर बिना सत्कार या तिरस्कारपूर्वक दिया जाता है वह तामस है। जो मनमें कष्ट पाकर, बदला लेनेकी इच्छासे या मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा, पुत्र-प्राप्ति, रोग-निवृत्ति या स्वर्ग-सुखादिकी प्राप्तिके लिये दिया जाता है वह राजस है और जो कर्तव्य समझकर प्रत्युपकारकी कोई भी भावना न रखकर उचित देश, काल, पात्रमें दिया जाता है वह सात्त्विक दान है। सात्त्विक दान भगवत्प्राप्तिमें बहुत सहायक होता है। जिस देश और कालमें जिस वस्तुका जिन प्राणियोंके अभाव हो और अपने पास वह वस्तु हो तो उस देश, कालमें उस वस्तुके द्वारा

उन प्राणियोंकी सेवा करना ही देश, काल देखकर दान देना है। भूखे, अनाथ, दुःखी, रोगी और असमर्थ तथा आर्त भिखारी आदि तो अन्न, वस्त्र, ओषधि या जिस वस्तुका जिसके पास अभाव हो, उस वस्तुद्वारा सेवा करनेके सदैव ही योग्य पात्र हैं, दानकी महत्ता रुपयोंकी संख्यापर नहीं है वह तो दाताकी नीयतपर निर्भर है। जिस दानमें जितना ही अधिक स्वार्थ-त्याग होगा, उतना ही उसका महत्त्व अधिक है। इसीलिये महाभारतके अश्वमेधपर्वमें पाण्डवोंके अपार दानकी निन्दाकर नकुलने उञ्छ-वृत्तिवाले गरीब ब्राह्मणके साधारण सत्तूके दानको महत्त्वपूर्ण बतलाया था। (महा० अश्व० ९० । ७) एक आदमी नामके लिये या अन्य किसी स्वार्थके वशमें होकर अपने करोड़ रुपयेमेंसे लाख रुपये दान करता है और दूसरा एक गरीब निःस्वार्थभावसे कर्तव्य समझकर अपने पेटको खाली रखकर अपनी एक ही रोटीमेंसे आधी रोटी दे देता है, इन दोनोंमें आधी रोटीके दानका महत्त्व अधिक है। यों तो न देनेकी अपेक्षा सकामभावसे भी अच्छे कार्यमें दान देना उत्तम ही है।

पाँच उपाय

उपर्युक्त छः उपायोंको काममें न लाया जाय तो

निम्नलिखित पाँचकी शरण ग्रहण करनी चाहिये। इन पाँचोंकी कृपासे परम सिद्धि मिल सकती है।

गायत्री, गोविन्द, गौ, गीता, गङ्गास्नान।
इन पाँचोंकी कृपासे शीघ्र मिलें भगवान॥

१ गायत्री—शास्त्रोंमें गायत्रीकी बड़ी ही महिमा गायी गयी है। गायत्रीका जप शुद्ध और मौन होकर प्रणव और व्याहृतिसहित करना चाहिये। गायत्री-मन्त्रमें सच्चिदानन्दघन विश्वव्यापी ब्रह्मकी स्तुति, उनके दिव्य तेजका ध्यान और प्रार्थना है।

भगवान् मनु गायत्रीकी महिमामें लिखते हैं—

ओङ्कारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः।
त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम्॥
एतदक्षरमेतां च जपन्व्याहृतिपूर्विकाम्।
सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते॥
सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्त्रिकं द्विजः।
महतोऽप्येनसो मासात्त्वचेवाहिर्विमुच्यते॥
योऽधीतेऽहन्यहन्येतांस्त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः।
स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान्॥

(२।८१, ७८-७९, ८२)

'ओंकारसहित तीन महाव्याहृति और तीन पदों-वाली गायत्रीको वेदका मुख समझना चाहिये। जो

वेदज्ञ द्विज प्रातःकाल और सायंकाल प्रणव (ॐ) और व्याहृति (भूः, भुवः, स्वः) सहित इस गायत्री-का जप करते हैं, उनको सम्पूर्ण वेदके अध्ययनका फल मिलता है। जो द्विज नगरके बाहर (एकान्त स्थानमें) स्थित हो प्रतिदिन एक मासतक एक सहस्र गायत्रीका जप करता है, वह जैसे साँप काँचुलीसे छूट जाता है इसी प्रकार महान् पापसे छूट जाता है। जो पुरुष आलस्यको छोड़कर प्रतिदिन नियमपूर्वक तीन वर्षतक गायत्रीका जप करता है वह वायुकी तरह गतिवाला और आकाशकी भाँति निर्लेप होकर परब्रह्म परमात्माको प्राप्त होता है।' अतएव गायत्रीका जप प्रतिदिन अवश्य करना चाहिये।

२ गोविन्द—भगवान् श्रीगोविन्दके अनन्य चिन्तनसे क्या नहीं होता ? भगवान् स्वयं कहते हैं—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९ । २२)

'जो अनन्यभावसे मेरेमें स्थित हुए भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे भजते हैं, उन नित्य एकीभावसे मुझमें स्थितिवाले पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।' अतएव

दृढ़ निश्चय और श्रद्धा-प्रेमके साथ भगवान्‌का चिन्तन करना चाहिये ।

३ गौ—हिन्दू-शास्त्रोंमें गौकी बड़ी महिमा है। गौकी सेवासे सर्व अभीष्टोंकी सिद्धि होती है । गो-मूत्र, गोमय, दूध, दही और घृत—यह पञ्चगव्य पवित्र और पापनाशक हैं। आजकल गौ-जातिका भारतमें बड़ी ही निर्दयताके साथ ह्रास किया जा रहा है। प्रत्येक धर्म-भीरु उन्नति चाहनेवाले पुरुषको तत्पर होकर यथाशक्ति गौ-जातिकी रक्षा और गौकी सेवा करनी चाहिये ।

४ गीता—गीता तो भगवान्‌का हृदय है। 'गीता मे हृदयं पार्थ ।'

भगवान् व्यासदेवजी कहते हैं—

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः ।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता ॥

(महा० भीष्म० ४३ । १)

'स्वयं कमलनाभ भगवान्‌के मुख-कमलसे निकली हुई गीताका ही भलीभाँति गान करना चाहिये, अन्य शास्त्रोंके विस्तारसे क्या प्रयोजन है ?'

गीताकी महिमा कोई क्या कह सकता है ? जो मन लगाकर गीताका अध्ययन करता है, उसीको अनुभव होता है। गीतामें बहुत-से ऐसे श्लोक हैं कि जिनमेंसे किसी आधे या चौथाई श्लोकके अनुसार भी

आचरण किया जाय तो भगवत्-प्राप्ति सहज ही हो सकती है। कहा गया है—

> सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
> पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥

'सम्पूर्ण उपनिषद् गौ हैं, दुहनेवाले गोपालनन्दन श्रीकृष्ण हैं, अर्जुन बछड़ा है, श्रेष्ठ बुद्धिवाला पुरुष इस महान् गीतामृतरूपी दुग्धको पान करनेवाला है।' अतएव प्रतिदिन मन लगाकर अर्थसहित गीताका पाठ और अध्ययन अवश्य करना चाहिये।

५ गङ्गास्नान—श्रीगङ्गाजीकी अपार महिमा है। भक्तोंने गङ्गाजीका नाम ब्रह्मद्रव रक्खा है यानी साक्षात् ब्रह्म ही पिघलकर निराकारसे नीराकार होकर बह चला है। गङ्गाके स्नान-पानसे पापोंका नाश और मुक्तिकी प्राप्ति शास्त्रोंमें जगह-जगह बतलायी गयी है। आज भी गङ्गातट-जैसा पवित्र स्थान और प्रायः नहीं मिलता। अच्छे-अच्छे साधु-महात्मा गङ्गा-तटपर ही निवास करते हैं। विदेशी डाक्टरोंने परीक्षा करके बतलाया है कि गङ्गाजलमें रोगनाशक शक्ति है। किसी भी रोगके बीजाणु होवें, गङ्गामें पड़कर नष्ट हो जाते हैं। वर्षों रक्खे रहनेपर भी गङ्गाजलमें कीड़े नहीं पड़ते यह तो विख्यात बात है। जो कोई श्रद्धासे

श्रीगङ्गाजीका सेवन, स्नान और जलपान करता है, वह परम गतिको पाता है, यह शास्त्रोंका सिद्धान्त है।

चार उपाय

उपर्युक्त पाँच उपाय न हों तो नीचे लिखे चार उपायोंको काममें लाना चाहिये।

संयम, सेवा, साधना, सत्पुरुषोंका संग।
ये चारों करते तुरत मोहनिशाको भंग॥

१ संयम—मन, वाणी, शरीरको इच्छानुसार न चलने देकर और सांसारिक विषय-भोगोंसे रोककर कल्याणमय मार्गमें लगाना ही संयम कहलाता है। मनु महाराजने तो मन, वाणी, शरीरको संयममें रखनेवालेको ही त्रिदण्डी कहा है—

वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कायदण्डस्तथैव च।
यस्यैते निहिता बुद्धौ त्रिदण्डीति स उच्यते॥
त्रिदण्डमेतन्निक्षिप्य सर्वभूतेषु मानवः।
कामक्रोधौ तु संयम्य ततः सिद्धिं नियच्छति॥

(१२। १०-११)

'वाग्दण्ड अर्थात् वाणीका संयम, मनोदण्ड अर्थात् मनका संयम और कायदण्ड अर्थात् शरीरका संयम, इन तीनोंको जो बुद्धिपूर्वक संयममें रखता है वही त्रिदण्डी है। जो मनुष्य समस्त प्राणियोंके प्रति मन, वाणी,

शरीरको संयमित कर लेता है तथा उनको रोकनेके लिये काम, क्रोधका संयम करता है, वह मोक्षको प्राप्त करता है।'

जो पुरुष मन, इन्द्रिय और शरीरको वशमें रखकर राग-द्वेषके वशमें न होकर संसारमें विचरता है वही आनन्दको प्राप्त होता है। संयमी पुरुष ही नीरोग, बलवान्, धर्मात्मा, दीर्घायु और मोक्षके योग्य होते हैं।

२ सेवा—गुरुजनोंकी और प्राणीमात्रकी निष्काम भावसे भगवद्-बुद्धिसे सेवा करनेवाला पद-पदपर भगवान्‌की सेवा करता हुआ अन्तमें भगवान्‌को प्राप्त करता है।

३ साधना—भगवत्प्राप्तिके लिये भजन, ध्यान आदि जो कुछ भी किया जाय सभी साधना है। अपने-अपने अधिकार, विश्वास, प्रकृति और रुचिके अनुसार भगवान्‌को पानेके लिये नियमित साधन अवश्य करना चाहिये।

४ सत्पुरुषोंका संग—भागवतमें कहा है—

दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभङ्गुरः।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम्॥

(११।२।२९)

'प्राणियोंके लिये मनुष्यदेह अत्यन्त दुर्लभ और क्षणभङ्गुर है। इसमें भी भगवान्‌के प्रिय भक्तोंके दर्शन तो और भी दुर्लभ हैं, क्योंकि भक्त, सन्त-महात्मा एक प्रकार-

से भगवान्‌के ही रूप हैं।' गोसाईंजी महाराज तो उन्हें रामसे भी बढ़कर बतलाते हैं—'रामतें अधिक राम-कर दासा' सन्तोंके संगसे पापोंका नाश होता है, अन्तः-करणकी शुद्धि होती है, मन परमात्मामें लगता है और संशयोंका उच्छेद होकर भगवत्प्राप्ति होती है। अतएव सत्पुरुषोंके संगका आश्रय अवश्य लेना चाहिये।

राजा रहूगणके प्रति महात्मा जडभरत कहते हैं—

रहूगणैतत्तपसा न याति
न चेज्यया निर्वपणाद्गृहाद्वा।
नच्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यै-
र्विना महत्पादरजोऽभिषेकम्॥
(श्रीमद्भा० ५।१२।१२)

'हे राजन्! परमज्ञान केवल महापुरुषोंका चरणरज मस्तकपर धारण करनेसे ही मिलता है। तपसे, वेदोंसे, दानसे, यज्ञसे, गृहस्थ-धर्मके पालनसे, जल, अग्नि या सूर्यकी उपासनारूप कर्मोंसे वह किसी प्रकार भी नहीं मिलता।' अतएव महापुरुषोंका सेवन ही मोक्षका द्वार है।

तीन उपाय

उपर्युक्त चार साधन न कर सकें तो निम्नलिखित तीन साधन करने चाहिये—

सत्य वचन, आधीनता, पर-तिय मातु समान।
इतनेपै हरि ना मिले, तो तुलसीदास जमान॥

१ सत्य वचन—कहा है—

सत्य बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।
जिनके हियमें साँच है तिनके हियमें आप॥

सत्य भगवान्‌का स्वरूप है, जहाँ सत्य है, वहीं भगवान् हैं। सत्यवादी होनेके कारण आजतक श्रीहरिश्चन्द्रका नाम चल रहा है। सत्यवादी होनेके कारण ही जो मुँहसे निकल जाता है, वही सत्य हो जाता है। स्वार्थ, आदत, हँसी-मज़ाक या भविष्यके वचनोंमें भी किसी प्रकार झूठ नहीं बोलना चाहिये।

२ आधीनता—अपनेको भगवान्‌के अधीन (अनुकूल) बना देना, अपनी स्वतन्त्रता छोड़कर परमात्माका सेवक बनकर उनकी आज्ञा और संकेतके अनुसार जीवन बिताना ही आधीनता है। संसारमें भगवद्भावसे पुत्रको माता-पिताके, शिष्यको गुरुके, स्त्रीको पतिके और सेवकको स्वामीके अधीन रहकर कर्तव्यका पालन करना भी भगवान्‌के ही अधीन होना है।

भगवान्‌के अधीन होनेपर उसमें भगवान्‌के प्रायः सभी गुणोंका विकास हो जाता है। स्वामीके बलको पाकर सेवक महान् बलवान् हो जाता है। राजाके

अधीन रहनेवाला मामूली सिपाही राजाके बलपर बड़े-बड़े धनियों और शक्तिशालियोंको बाँध लेता है, इसी प्रकार भगवान्के अधीन होकर मनुष्य भगवान्के बलसे बलीयान् हो सारे पापोंपर विजय प्राप्त करके भगवान्का परम प्रेमी बन सकता है।

३ पर-तिय मातु-समान—स्त्रीमात्र जगत्-जननीका स्वरूप है, यह समझकर अपनी स्त्रीको छोड़कर अन्य सबके चरणोंमें हृदयसे प्रणाम करना और सबके प्रति भक्ति-श्रद्धा रखना मनुष्यके लिये कल्याणप्रद है। जो पुरुष परस्त्रीमात्रमें मातृ-बुद्धि रखता है, उसके तेज और तपकी वृद्धि होती है और वह पापोंसे बचकर भगवान्को पा सकता है।

कहा जाता है कि यह दोहा श्रीतुलसीदासजी महाराजका है और वे इसमें इस बातका जिम्मा लेते हैं कि इन तीनों साधनोंका आश्रय लेनेवाले अवश्य ही तर जायँगे।

दो उपाय

उपर्युक्त तीन साधन न साधे जायँ तो नीचे लिखे दो ही साधनोंका अनुसरण करना चाहिये—

दो बातनको भूल मत जो चाहै कल्यान।
नारायण इक मौतको दूजे श्रीभगवान॥

१ मौतको याद—संसारकी प्रत्येक वस्तु नाश होनेवाली है, जो उत्पन्न हुआ है उसका नाश अवश्यम्भावी है। हमारा शरीर और हमारे सम्बन्धी तथा समस्त विषय एक दिन कालके ग्रास बन जायँगे! फिर इनसे मोह क्यों? इस नाशवान् शरीरके लिये, जो प्रतिक्षण मृत्युकी ओर बढ़ रहा है, इतना प्रपञ्च किसलिये? मनुष्यको मौत याद नहीं रहती, इसीसे उसे विषयोंमें वैराग्य नहीं होता। महाराज युधिष्ठिरने यक्षसे कहा है—

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।
शेषाः स्थिरत्वमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्॥

(महा० वन० ३१३। ११६)

'रोज-रोज प्राणी मरकर यमलोकको जा रहे हैं, (हाथसे उनकी दाह-क्रिया करते हैं) परन्तु बचे हुए लोग सदा जीना ही चाहते हैं, इससे बढ़कर अचरज और क्या होगा?' इसलिये 'नारायण स्वामी' मौतको याद रखनेका उपदेश देते हैं, क्योंकि हर समय मौतको याद रखनेसे नये पाप नहीं बन सकते, तथा विषयोंमें वैराग्य हो जाता है।

२ भगवान्‌की याद—वैराग्यके साथ ही अभ्यास भी होना चाहिये। भगवान्‌ने अभ्यास और वैराग्य दोनोंके सम्पादनसे ही मनका निरोध बतलाया है।

मृत्युको नित्य याद रखनेसे वैराग्य तो हो जायगा, परन्तु उससे आनन्द नहीं मिलेगा। जगत् शून्य और विनाशी प्रतीत होगा। इसलिये उसीके साथ भगवान्‌का चिन्तन होना चाहिये। सारे संसारमें भगवान् ही व्याप्त हो रहे हैं और जो कुछ होता है, सब उन्हींकी लीला है। वही परमानन्द और परम चेतन तथा ज्ञानस्वरूप हैं। निरन्तर उनका स्मरण करनेसे सब पापोंके नाश और मनके भगवदाकार हो जानेपर अनायास ही मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है।

एक ही उपाय

ये दो उपाय भी न हों तो भगवान् श्रीकृष्णके मुखसे उपदिष्ट, सबका सार और महान् इस एक उपायका अवलम्बन तो सभीको करना चाहिये। यह एक ही उपाय ऐसा है जिसके उपयोग करनेसे आप ही सब कुछ सिद्ध हो जाता है। उपाय है—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६६)

अर्थात्—

सब धर्मनको छोड़कर एक शरण मम होहि।
चिन्ता तजु, सब पापतें मुक्त करौंगो तोहि॥

'हे अर्जुन ! तू सब धर्मोंको अर्थात् सम्पूर्ण कर्मोंके आश्रयको त्यागकर केवल एक मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्माकी ही अनन्य शरणको प्राप्त हो, मैं तुझको सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।' भगवान् श्रीराम कहते हैं—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥
(वा० रा० ६ । १८ । ३३)

'जो एक बार भी मेरे शरण होकर यह कह देता है कि मैं तेरा हूँ, उसको मैं सर्वभूतोंसे अभय कर देता हूँ, यह मेरा व्रत है ।'

बस, भगवान्‌की सर्वतोभावेन शरणागति ही परम और सर्वोत्तम उपाय है । जो भगवान्‌के शरण हो गया वह भगवान्‌का हो गया, वह सदाके लिये निर्भय और निश्चिन्त हो गया ।* अतएव सबका आश्रय छोड़कर हमारे एकमात्र परम प्रेमी सदा हित करनेवाले भगवान्‌की शरण ग्रहण करनी चाहिये ।

---

* शरणागतिका विशेष तत्त्व जानना हो तो तत्त्व-चिन्तामणि प्रथम भाग पढ़िये ।

मिलनेका पता—

गीताप्रेस गोरखपुर